श्लोकों में कहा है, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्मों का विधान उनकी प्रकृति के गुणों के अनुसार है। अतः कोई भी किसी दूसरे के कर्तव्य का अनुकरण न करे। जो मनुष्य स्वभाव से शुद्रों के कर्म में रुचि रखता है, उसे केवल इस आधार पर ब्राह्मण होने का दम्भ नहीं करना चाहिए कि वह ब्राह्मणवंश में जन्मा है। सबको अपने स्वभाव के अनुरूप कर्म करना चाहिए। कोई भी कर्म, जो भगवत्सेवा के लिये किया जाता है, बुरा नहीं है। ब्राह्मण का कर्म सात्त्विक है, इसलिए जो मनुष्य सत्त्वगुणी नहीं है, वह ब्राह्मण के स्वधर्म का अंध-अनुकरण न करे। क्षत्रिय को युद्ध-हिंसा और कूटनीति में असत्य-भाषण जैसे कितने ही गर्हित कर्म करने पड़ते हैं। राजकीय विषयों में ये दोष अवश्य रहते हैं; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि क्षत्रिय अपने कर्तव्य को त्याग कर ब्राह्मण का अनुकरण करने की चेष्टा करे।

वास्तव में, सब को श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए कर्म करना चाहिए। इस संदर्भ में अर्जुन का उदाहरण हमारे सामने है। क्षत्रिय होते हुए भी वह विपक्ष से लड़ने में संकोच कर रहा था। परन्तु यदि यही युद्ध भगवान् श्रीकृष्ण के लिए किया जाय, तो फिर अधःपतन का कोई भय नहीं। व्यापार-क्षेत्र में कभी-कभी व्यापारी को अर्थ-लाभ के लिए बहुत झूठ बोलना पड़ता है। यदि वह ऐसा न करे तो लाभ से बिल्कुल वंचित रह जायगा। व्यापारी कभी-कभी कहते हैं, 'ग्राहक महोदय! आपसे मैं लाभ नहीं कमाता।' परन्तु यह ध्यान रहे कि लाभ के बिना कोई व्यापारी जीवित नहीं रह सकता। स्पष्टतः यह कहने वाला झूठा है। परन्तु इससे व्यापारी को यह नहीं सोचना चाहिए कि उसके कार्य में झूठ बोलना अनिवार्य है, इसलिए उसे अपने वैश्य-कर्म को त्याग कर ब्राह्मण के कर्म में प्रवृत्त हो जाना चाहिए। ऐसा करने का निषेध है। यदि कोई अपने कर्मों से श्रीभगवान् की पूजा करता है तो इस बात का महत्त्व नहीं कि वह ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वैश्य है, अथवा शुद्र है। नाना प्रकार के यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को भी कभी-कभी किसी यज्ञ के लिए पशु-हिंसा करनी पड़ती है। ऐसे ही, यदि कोई क्षत्रिय अपने स्वधर्म के अनुसार शत्रु को मार डाले, तो वह पापग्रस्त नहीं होगा। तीसरे अध्याय में इस तत्त्व का स्पष्ट और विशद विवेचन है। मनुष्यमात्र को यज्ञ, अर्थात् भगवान् विष्णु के लिए कर्म करना चाहिए। जो कुछ अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए किया जाता है, उसी से बन्धन होता है। अतएव सिद्ध हुआ कि मनुष्य प्रकृति के उसी गुण के अनुरूप कर्म करे, जिस को वह प्राप्त हुआ है और एकमात्र श्रीभगवान् की सेवा के प्रयोजन से कर्म का संकल्प करना चाहिए।

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।४८।।

सहजम्=स्वभाव से नियत; **कर्म**=कर्म को; **कौन्तेय**=हे अर्जुन; **सदोषम् अपि**=दोषयुक्त होने पर भी; **न त्यजेत्**=नहीं त्यागे; **सर्वारम्भाः**=सब कर्म; **हि**=निःसन्देह; **दोषेण**=दोष से; **धूमेन**=धूएँ से; **अग्निः इव**=अग्नि के समान; **आवृताः**=ढके हैं।